



Date _____
Page _____

~~लेकिन~~ लेकिन उनके अहंकार और चर्मांधता से अकबर को निराशा हुई। 1578 ई० में उसने इन समाजों का अन्त कर दिया। यद्यपि वह व्यक्तिगत रूप से अभी भी विद्वानों एवं आचार्यों से मिलता रहा।

1579 ई० में अकबर ने एक मजहर या चौखण्डा पत्र प्रस्तुत किया और उल्लेमा से इसे रवीकृत कराया, जिसके अन्तर्गत अकबर की धार्मिक मामलों में भी कुछ अधिकार प्राप्त हुये ऐसे प्रश्नों पर जिनमें उल्लेमा (मुज्ताहिद) में विचार भेद हो अथवा जहाँ राष्ट्र का हित महत्वपूर्ण हो वहाँ सम्राट अपनी राय व्यक्त कर सकता था जो सभी के लिए माननीय थी यदि यह कुरान और हदीस के शिक्षा के अनुसार होती

रिमय के अनुसार यह चौखण्डा (Responsibility Degree) के समान थी और इससे अकबर की निरंकुशता धार्मिक क्षेत्र में भी स्थापित हो गई। यह विचार तर्कसंगत नहीं क्योंकि अकबर के अधिकार सीमित थे। वह कुरान एवं जनहित के विरुद्ध कोई आदेश नहीं दे सकता था। मजहर का मुख्य उद्देश्य उल्लेमा को सम्राट के नियंत्रण में लाना था और धार्मिक सहिष्णुता की नीति के लिए अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करना था।

मजहर का विरोध कट्टरपंथी उल्लेमा ने किया। उसी समय तुर्बेक सामन्तों का विरोध भड़क उठा और अकबर को कठिन चुनौति का सामना करना पड़ा, लेकिन वह इस विद्रोह को दबाने में सफल रहा और 1580-1581 ई० तक उसने अपनी गति-स्थिति सुदृढ़ कर ली। इसी वर्ष उसने एक नया विचार प्रस्तुत किया, जिसे तौहीद-ए-इलाही और अधिक लोकप्रिय रूप में दीन-ए-इलाही कहा गया। कुछ इतिहासकार दीन-ए-इलाही को नया धर्म मानते हैं क्योंकि जहाँगीर के

समकालीन इतिहासकार मोहसिन फाती ने अपनी रचना दक्खिस्तान-ए-मजहिब में इसे एक असल चर्म के रूप में लिखा है। यह विचार गलत है और दीन-ए-इलाही वास्तव में एक ऐसी आचार संहिता थी जिसमें अकबर ने विभिन्न धर्मों के उपदेशों को संकलित कर दिया था। इसका उद्देश्य एक नये चर्म की स्थापना नहीं था, बल्कि विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच सद्भाव एवं सहिष्णुता को बढ़ावा देना था। इसके अतिरिक्त सम्राट के प्रति निष्ठा एवं स्वामीभक्ति की भावना को भी प्रबल बनाना था। लेकिन अकबर ने दीन-ए-इलाही के प्रचार के लिए विशेष उपाय नहीं किये और डिक्कन के अनुसार दीन-ए-इलाही की संख्या 18 से अधिक नहीं थी।

अकबर की धार्मिक नीति का मूलमूलन अलग-अलग ढंग से किया गया है। कुछ इतिहासकार अकबर को एक महान् एवं धर्मनिरपेक्ष शासक मानते हैं और उसकी इस नीति को मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाने में एक निर्णायक तत्व माना है। यह कहा जाता है कि अकबर की इस उदारता ने हिन्दू प्रजा को मुगल साम्राज्य का समर्थक बना दिया और जब तक यह नीति मुगलों द्वारा अपनाई जाती रही। साम्राज्य शक्तिशाली और समृद्ध बना रहा। दूसरी ओर इस नीति के विरुद्ध कट्टरपंथी मुसलमानों में प्रतिक्रिया हुई। बदायूनी के अनुसार अकबर की धार्मिक नीति इस्लाम विरोधी उपायों से भरी थी। इस नीति के विरुद्ध शेरश अहमद सरहिन्दी के नेतृत्व में व्यापक विरोध भी हुआ जो जहाँगीर के समय स्फुट रूप से प्रकट हुआ। अकबर की नीति निश्चित रूप से सफल रही। अकबर के सामने जिस प्रकार की राजनीतिक समस्याएँ थीं उनमें एक सहिष्णुतापूर्ण नीति को अपनाना ही उचित था। उसकी नीति से हिन्दू प्रजा साम्राज्य के प्रति स्वामीभक्त भी बनी और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी नई

विकास

परम्पराओं का आरंभ हुआ। अकबर ने हिन्दू धर्म संबंधी-
रचनाओं का फारसी भाषा में अनुवाद करवा ताकि मुसलमान
इन विचारों से परिचित हो सकें। उसने हिन्दू और मुस्लिम
समाज में प्रचलित अन्धविश्वास एवं कुटीतियों को भी दूर
किया और इस प्रकार उसकी धार्मिक नीति एक युग की
प्रतीक बन गई।

इस प्रकार निष्कर्ष के तौर पर कहा
जा सकता है कि इस सहिष्णुतापूर्ण नीति का महत्व
तब और भी बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि यह नीति
ऐसे समय में अपनाई गई जब यूरोप में धर्मान्धता का
प्रचलन था। अकबर इस प्रकार अपने समय से आगे के
विचारों को अपनाने वाला व्यक्ति था। वह एक नये युग
का अग्रदूत था और इसलिए उसे एक महान शासक कहा
जाता है

अनिल कुमार, इतिहास विभाग, आरबीजीआर कॉलेज, महाराजगंज
TDC PART II, HISTORY (Hon), PAPER- III
भूमि अनुदान - पूर्व मध्यकाल की एक व्यवस्था (शीघ्र भग)

Page No.

DATE: / /

अतः ऐसा

भूमि अनुदान देसे ही सिंचित क्षेत्र में दिया जाता था। यही कारण है कि गंगा और उसकी सहायक नदियों के किनारे ब्राह्मण वस्तियां अधिक पायी जाती हैं। इस तरह ब्रह्मदेय दान से ब्राह्मणों में भी कृषक समुदाय का उदय होने लगा और इनमें भी बड़े-बड़े भूस्वामी उत्पन्न होने लगे।

तृतीय प्रकार का भू-अनुदान देवदान और -

परिहार भूमि प्रायः मठ-मंदिर को दिया जाता था। इस प्रकार के भूदान में जमिन के सहित उस पर बसे गाँव, जंगल पहाड़ का भी हवामित्व मठ मंदिर को दे दिया जाता था। परिहार सभी मठ मंदिरों को नहीं, बल्कि खास कर जनजाति और निचली बुद्ध जाति प्रधान क्षेत्रों में उन पर शासन करने के लिए बड़े मठ और मंदिरों को दिया जाता था। अतः ये मठ मंदिर देसे केन्द्र बिन्दुओं पर बनाये जाते थे, जो जनजातियों और बुद्धों की स्वर्ण जातियों की संस्कृति से जोड़कर उनमें नये धार्मिक विचारों और देवी देवता के पूजन को प्रचारित कर उन्हें स्वर्ण संस्कृति का अंग बना सकें। अतः देव-दान के साथ अग्रहार भूमि और ब्राह्मण देव भूमि के आस-पास या उसके बीच दिया जाता था और उस पर खेती उगाई की देख-रेख पहले गैर ब्राह्मण ग्राम प्रधान या उसके पंचायती सभा के द्वारा कराया जाता था। फिर बाद में मठ-मंदिर के पुजारी स्वयं करने लगे थे। इस तरह परिहार से मठ-मंदिरों की जमीन की देख रेख के लिए ब्राह्मण और गैर ब्राह्मण भूपति वर्ग पैदा किया गया था। फलतः यहाँ की मठ-मंदिर जो राज्य के अन्तर्गत सामन्ती राज्य का रूप ग्रहण कर लिया था, के महर्ष और जोतदार के बीच विचौलिया भूपति वर्ग पैदा हो लिया था।

इस प्रकार उपरोक्त ~~कथनों~~ के तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि अग्रहार राजकीय सेवा में वेतन की जगह दिया जाता था। ब्रह्मदेय भूमि भी बारह वर्ष तक ही कर मुक्त रखा जाता था उसके बाद उसे अग्रहार में बदला जाने लगा। फलतः ब्राह्मणों की भी राज्या की सैन्य अथवा अन्य सेवा कानी पड़ती थी। देवदान की छूट सीमा निर्धारित किया जाने लगा।

महावली राजा अपने अधिनस्थ राजा और सामंतों पर सेवा तथा नजराना का भार बढ़ाने लगा। इस तरह प्रत्येक उपर वाला नीचे वालों का शोषण करना शुरू किया था। अतः सभी दबावों का अन्तिम भार किसानों पर आ गिरने से समाज में एक व्यापक तनाव उत्पन्न होना स्वभाविक हो गया। निचली जाति के भूस्वामित्व छीने जाने के आक्रोश को सामना करने की क्षमता तथा अधिकृत महावली और उसकी सेना में नहीं थी। ये शिकारी और पशुपालक लोग स्वभाव से लठ्ठार थे। समुद्रगुप्त जैसा महावली आवली (जंगली) लोगों की सेना में नियुक्त कर चालीस युद्ध जीता था। प्रारंभिक मध्यकाल के अधिकांश महावली शासक की भी जातीय प्रणुति निचली जाति की थी। इसलिए वे उसकी शक्ति से परिचित थे। अतः उससे सीधे टकराने की जगह धर्म का सहारा लिया गया था और इस काम को ब्राह्मण और उसका मठ-मन्दिर ही संभव कर सकता था। अतः एक सोची समझी नीति के तहत ब्राह्मणों और उनके मठ-मंदिरों को दान दिया गया था, ताकि वे निचली जातियों में नई सत्ता की विचारधारा को धर्म के माध्यम से फैला सकें। ब्राह्मणों ने बखूबी इस काम को किया था।

इस प्रकार प्रारंभिक मध्यकालीन ब्राह्मणों का ग्रंथ और महावलीयों का अनुदान पत्र भू-अनुदान की महत्ता की विचारधारा से ओत-प्रोत है। भू-अनुदान को सर्वोत्तम दान घोषित किया गया था। पुराणों, महाकाव्यों, गारुड पुराण, में एवं स्मृतियों में भू-अनुदान का महिमा मंडन प्रचुर मात्रा में मिलता है। यही कारण है कि भारतीय समाज में अब भी शूद्र और सभी जातियों की जारी जिन्दगी इन्हीं ब्राह्मणों ने शूद्र तुल्य बना दिया था, ब्राह्मण दान और धर्म में अधिक रकचि रखते हैं। पूर्व मध्यकाल शासक परिवार निचली जातियों के श्रम और संसाधन पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए ब्राह्मण और सभी तरह के सम्प्रदाय के मठ-मंदिरों को भू-अनुदान दे अपने लिए सत्ता के स्थायित्व के समर्थन के लिए एक बौद्धिक क्रांति को तैयार किया था, जो निचली जाति के लुटते भू-स्वामित्व के आक्रोश की धार को कुन्द ही नहीं किया था बल्कि उसे धर्म की जहर पिलाकर सदा के लिए शान्त कर दिया था। ब्राह्मणों ने भूदान में पायी सम्पत्ति और प्रतिष्ठा के बदले राजा के लिए काम करने लगे। फलतः निचली जाति के शासक और ब्राह्मण गठबंधन तैयार हुआ। इसी को कुछ इतिहासकारों ने सीमित दायरा में बाँधते हुये ब्राह्मण-राजपूत गठबंधन का नाम दिया है।

अनिल कुमार, इतिहास विभाग, आर० बी० जी० आर० कॉलेज, महाराजगंज
CBES, SEMESTER-1, PAPER-1, HISTORY MJC/MIC
SESSION-2023-2024, प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार (शोध भाग)

गत कृषि और गौरव से आजीविका चलाते वाले सभी वैश्य तबहरे प्रीतिपात्र हैं न? क्योंकि कृषि और व्यापार आदि में सफल रहने पर ही यह लोक सुखी एवं उन्नतिशील होता है। इससे सिद्ध है कि समाज में तत्कालीन कृषि एवं व्यापार व्यवस्था की सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त था। इस काल में धन व अर्थ में केवल सिक्के ही नहीं अपितु अन्न, पशु, गृह, भूमि, गाय, हाथी, घोड़े, कुतिया, मृगचर्म आदि भी शामिल थे। प्रत्येक वस्तु जो विनिमय का माध्यम होती थी अर्थ कलाती थी व्यक्ति के जीवन में धन का महत्व सर्वस्वीकृति था। राम के वन जाते समय हरे-भरे जंगल तथा धन-धान्य से सम्पन्न खेत और उद्यान समृद्ध कृषि के संकेत हैं। अयोध्या काण्ड के 44वें सर्ग में नैद स्तुति 'जोगती', सरयू आदि नदियों का उल्लेख मिलता है। इसके अलावा का उपयोग प्रायः खेती की सिंचाइ में होता था।

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के अतिरिक्त पशुपालन भी एक प्रमुख व्यवसाय था। इस युग में व्यापार करने वाले वैश्य लोगों को वाणिज्य कहा गया है। अयोध्या व्यापार का प्रमुख केन्द्र माना जाता था। रामायण में अनेक प्रकार के रथों का उल्लेख है। यातायात के साधन के रूप में रथ, पालकी एवं गाड़ियों का प्रयोग किया जाता था। रामायण में स्पष्ट कहा गया है कि आय-व्यय के सामंजस्य के बिना प्रगतिशील आर्थिक व्यवस्था सम्भव नहीं थी। राजा को सर्वप्रथम अपने आय-व्यय का बजट तैयार करना चाहिए। सभी राष्ट्र सही दिशा में विकसित कर सकते हैं। रामायण में उपज का $\frac{1}{6}$ भाग राजा को दिया जाने का नियम उल्लेख का उल्लेख मिलता है। प्रजा की रक्षा करना राजा की जिम्मेदारी होती है। रामायण के अनुसार प्रजा पर अहसनीय कर नहीं लगाये जाने चाहिए।

महाभारत कालीन युग में जीविकोपार्जन के साधनों में कृषि, पशुपालन, उद्योग, व्यापार वाणिज्य थे। राजाओं में परस्पर कलह ईर्ष्या, द्वेष की भावना के कारण समाज की आर्थिक स्थिति बिगड़ी। प्रत्येक व्यक्ति के कर्मों का निर्धारण करते हुये राजा के लिए आदेश था कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने के लिए उसे सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। चारों वर्णों के लोगों को उनके मर्यादा के अनुसार कार्य दिया जाए। वस्तुओं के आयात-निर्यात के समय प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष करों के लगाये जाने का उल्लेख मिलता है। राजा को अलि-भोग विचार करने के उपरान्त ही कर लगाना चाहिए। महाभारत में एक जगह यह भी कहा गया है कि यदि राजा के खजाने में कमी हो तो वह उन ब्राह्मणों से कर ले सकता है जो राजपुरोहित तथा मन्त्री हो। प्राचीन आचार्यों ने भूमि के भुगतान के अलग-अलग नियमों का उल्लेख किया है। महाभारत में $\frac{1}{6}$ से $\frac{1}{10}$ भाग तक कर भुगतान हेतु निर्धारित किया गया। कर चोरी करने अपवा करदाता द्वारा अपनी सम्पत्ति को राज्य के बाहर धिष्ठा देने के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। शत्रु तथा आज लेने की प्रथा का भी प्रचलन था।

सूत्रकालीन आर्थिक विचार - इस काल में तीन जातियों द्वारा पशुपालन करने का उल्लेख मिलता है। गायों का आदान प्रदान

वस्तु विनिमय के रूप में होता था। गौतम के अनुसार राजा को $1/6$ से $1/10$ भाग कर के रूप में लेना चाहिए। सभी वर्गों के लोगों को उत्पादन वस्तुओं पर कर भुगतान करना पड़ता था। पाणिनी ने राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार करने वाले लोगों का उल्लेख किया है। पाणिनी और कात्यायन द्वारा विभिन्न प्रकार के मार्गों का उल्लेख किया गया है। व्यापार का केन्द्र बाजार था जहाँ लोग विभिन्न वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते थे। विनिमय में प्रयोग किये जाने वाले सोने-चाँदी ताँबे के सिक्कों का उल्लेख पाणिनी द्वारा किया गया है। उपयोग संबंधों में कुशल एवं अकुशल श्रमिकों में, अकुशल श्रमिकों को पाणिनी ने कर्मकार (विभिन्न प्रकार के कार्य करने वाले) कहा है। व्यक्तिगत संपत्ति के संबंध में गौतम का मत था कि "कोई भी व्यक्ति चैतुक संपत्ति, स्वयं खरीदी हुई वस्तु, भाइयों के बंटवारे से प्राप्त धन, स्वयं पायी हुई, किसी की छोड़ी हुई वस्तु का स्वामी होता था। पिता की संपत्ति के बंटवारे पर भी गौतम द्वारा नियमों का प्रतिपादन किया गया है "पिता की मृत्यु के बाद पुत्र उसकी संपत्ति प्राप्त करें अथवा पिता के जीवन काल में भी माता के रजोदर्शन आयु समाप्त होने पर इच्छानुसार विभाजन करे अथवा सभी संपत्ति ज्येष्ठ पुत्र को प्राप्त हो और वह शेष लोगों का पिता के तुल्य भरण-पोषण करे। स्त्रियों में व्याज के लेन-देन की चर्चा है। गौतम ने सुवर्ण आदि पर ऊँची दर पर व्याज का निर्धारण किया है।

वैदिक कालीन आर्थिक विचार — जातक कथाओं में धन की लिप्ता का उल्लेख मिलता है। जातक कथाओं में वर्णित कहानियों के अनुसार धन का लोभ करने पर अन्त में परिणाम बुरा भुगतना पड़ा आदि तत्कालीन समाज का चित्र प्रस्तुत करते हैं। वस्तुओं के मूल्य का निर्धारण माँग और पूर्ति के आधार पर होता था। डाकुओं से व्यापारियों को होने वाली कठिनाइयों का वर्णन भी जातकों में मिलता है। व्यापारियों को सही विशेष द्वारा ठग जाने की सूचना, व्यापारियों द्वारा क्रय-विक्रय से लाभ, विभिन्न प्रकार के व्यापारिक मार्ग, व्यापारिक समूहों के लिए यातायात के साधनों का पर्याप्त प्रबंध, वस्तुओं पर लेवी लगाने के लिए अंगरवा जैसे अधिकारी की नियुक्ति तथा स्वतंत्र रूप से मजदूरी करने वाले कर्मकार कहे जाते थे, इन सबकी जानकारी जातकों से प्राप्त होती है।

स्मृतिकालीन आर्थिक विचार — स्मृतिकाल में समाज को चार वर्गों में विभक्त कर सबके पृथक-पृथक कर्तव्य निर्धारित किये गये। मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा वैश्य से रखती, वाणिज्य, महाजनी और शूद्रों का पालन और शूद्रों से द्विजातियों की सेवा कराये एवं जीवन निर्वाह करने हेतु धन उत्पादन करने के सभी मार्गों का जिक्र है। राजा को व्यापारियों की स्थिति समझकर कर लेना चाहिए। कृषि उद्योग तथा करों के संबंध में नियम ताकी कृषि उद्योग का कार्य सुव्यवस्थित रूप से चलता रहे। राजा को क्रय-विक्रय का दर तथा बाजार में बिकने वाली वस्तुओं का मूल्य निर्धारित कर देना चाहिए। ऋण लेने के संबंध में अनेक प्रकार के नियम, कर्जदार से वसूली के नियम, अधिक कर लगाने का विरोध तथा आवश्यक वस्तुओं पर कर लगाने के पक्षकार मनु ने अपने स्मृति में कही है। कर-चौरी करने वाला व्यापारी देश-प्रेमी समझा जाए इसकी चर्चा भी मनुस्मृति में है।

स्मृतियों में कृषि के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए सिंचाई की व्यवस्था का वर्णन है। मनु ने सिंचाई के साधनों को नष्ट करने वालों के लिए कठोर नियम प्रतिपादित किये हैं।

पुराणों में आर्थिक विचार — पुराणों में भी आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन वार्ताशास्त्र के अन्तर्गत किया गया। इसके अन्तर्गत कृषि, वाणिज्य एवं पशुपालन था। पुराणों में रवैत को हानी पहुँचाने वाले को अपराधी माना गया। पुराणों में वर्णित है कि हल से उत्खनित मिट्टी को शौच कर्म के प्रयोग में ^{नहीं} लाना चाहिए। वाणिज्य का कार्य वैश्य को ही दिया गया एवं क्रय-विक्रय वैश्यों की जीविका बताया गया। ब्राह्मणों के लिए वाणिज्य व्यापार निषिद्ध माना गया। सामाजिक क्रियाओं के अनुकूल विभिन्न प्रकार के उत्पादनों का विभाजन कर दिया गया। पुराणों के समय तक निष्क और सुवर्ण ~~का~~ जैसे सिक्के का प्रचलन काफी हो गया था। यह विनिमय का प्रमुख साधन था। पुराणों में कर सम्बन्धी नियमों का विवेचन भी मिलता है। अग्नि पुराण के अनुसार अपने देश में उत्पादित वस्तुओं के कुल मूल्य का $\frac{1}{20}$ भाग कर के रूप में लिया जाता चाहिए। इस युग में अनेक जातियाँ उत्पन्न हो गई थी। राज कर अथवा राजशुल्क का भी विधान पुराणों में मिलता है। अधिक शुल्क लेने की आलोचना भी की गई है। जब राजशुल्क अधिक और असह्य हो जाती है तब प्रजा पीड़ित होकर अन्य देशों में पलायन कर जाती है। उद्योग-धंधों के विकास के कारण आर्थिक संघटन में शिल्पियों का विशेष स्थान था भले ही उनकी सामाजिक स्थिति शोचनीय रही हो।

स्पष्टतः वार्ताशास्त्र का इतिहास तो लम्बी

से प्रारंभ हो जाता है जबसे मानव ने पशुओं का पालन और कृषि करना सीखा। सिन्धु सभ्यता में कृषि, पशुपालन तथा व्यवसाय इन तीनों का प्रचलन था। वैदिक काल में भी कृषि पशुपालन, वाणिज्य से संबंधित क्रियाओं का उल्लेख मिलता है। महाभारत और रामायण काल में भी समाज को वार्ता पर आश्रित रहने की सलाह दी गई। उपनिषदों में धन को सम्मान पूर्वक देखा गया किन्तु धन लिप्सा के पक्ष में लोग बिलकुल नहीं थे। सूत्र, स्मृति, पुराणों में भी वार्ता सम्बन्धित क्रियाएँ और व्याख्या देवने की मिलती हैं। आर्थिक विचार समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहे और यह भी स्पष्ट था कि लोगों की आर्थिक लिप्सा मर्यादित होनी चाहिए।